International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232; Impact Factor: RJIF 5.22
Received: 26-01-2020; Accepted: 27-02-2020; Published: 13-03-2020
www.hindijournal.com
Volume 6; Issue 2; 2020; Page No. 31-33

समकालीन कहानी में आर्थिक एवं राजनैतिक मूल्य

डा0 रजनी बिष्ट
स्वामी विवेकानन्द कालेज ऑफ ऐजूकेशन रूडकी, उत्तराखंड, भारत।

प्रस्तावना

आज के इस अर्थ केन्द्रिय युग में साधारण मनुष्य जब मूल्य शब्द सुनता है तो उसका सीधा अर्थ किसी वस्तु के दाम अथवा कीमत से लगा लेता है लेकिन ऐसा नहीं है क्योंकि मूव्यशब्द का प्रयोग केवल अर्थ जगत में ही नहीं वरन् सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक एवं साहित्यिक आदि क्षेत्रों में व्यापक रूप में किया जा रहा हैं। साहित्य की दृष्टि में मूल्य एक धारणा है जिसका सीधा सम्बन्ध मनुष्य से है। इनका स्वरूप मनुष्य के मन में है बाह्य वस्तुओं में नहीं। वास्तव में मूल्य मानवीय व्यवस्था के वह निर्धारक एवं निर्देशक सिद्धान्त तथा मानक हैं जो मानव की क्रियाओं तथा विचारां पर आधारित होते है और उसे सामाजिक व्यवस्था के अनुरूप कार्य करने की दिशा प्रदान करते हैं। ''जन सामान्य के लिए वे मूल्य और विषय मूल्यवान है जो किसी न किसी रूप में उसकी आवश्यकताओ ंकी पूर्ति और इच्छाओं की तृप्ति करते है। [1]

मूल्य समाज के वे आधार स्तम्भ हैं जिनपद समाज की सभ्यता एवं संस्कृति की भव्य इमारत खड़ी है।''[2] युगीन परिस्थितियों से प्रभावित साहित्यकार अपने साहित्य में समाजपयोगी मूल्यो की प्रतिष्ठा करता है। इस आधार पर मूल्यों को सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक, दर्शानिक नैतिक, मानवतावादी, सौन्दर्यगत आठ भागों में बाँटा गया है। समाज में संस्कार, आदर्श एवं रीति–रिवाज से सम्बन्धित जीवन दृष्टियों का सामाजिक मूल्य कहा जाता है। राजनीति का प्रभाव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र पर पड़ा हैं। शासन व्यवस्था से सम्बन्धित मूल्य राजनैतिक मूल्य कहलाते है। समाज का ढाँचा उसकी अर्थ व्यवस्था पर केन्द्रित होता है। अर्थ मूल्य की सत्ता इस कदर बढ चुकी है कि प्राणी अन्य मूल्यों को तुच्छ समझकर उन सबकी पूर्ति अर्थ से ही करने लगा हैं इस कारण आर्थिक मूल्यों में विघटन की स्थिति उत्पन्न हो गई है। मानव के अपने या अपने समुदाय में प्रचलित धर्म व ईश्वर से सम्बन्धित मूल्य धार्मिक मूल्य कहलाते है।

दार्शनिक मूल्यों से अभिप्राय उन मूल्यों से हे जो सम्पूर्ण सृष्टि का अखण्ड रूप से विवेचन करने की दृष्टि प्रदान करते है। अद्वैतवाद, गाँधीवाद, मार्क्सवाद, अस्तित्ववाद एवं अरविन्द आदि दर्शनों ने जीवन को अत्यधिक प्रभावित किया है। ''मूल्यों का मूल अनुभव पर आश्रित है। एक मशीन मूल्यों को नहीं जान सकती क्योंकि वह अनुभव करने योग्य नही है''[3] सौन्दर्यपरक मूल्यों का विकास भौगोलिक परिस्थितियों तथा सांस्कृतिक परिवेश में होता हैं समाज में व्यक्ति की अपनी इच्छा, भावना, संवेदना एवं दृष्टिकोण सम्बन्धी जो मान्यताएँ होती हैं, उन्हें मानवीय मूल्य की कोटी में रखा जाता है। नैतिक से सम्बन्धित मूल्य नैतिक मूल्य कहलाते हैं। यह समाज हित से प्रेरित मान्यताएँ है।

आदर्शवादी दार्शनिकों की दृष्टि में मूल्य निरपेक्ष हैं, शाश्वत हैं, देशकाल इत्यादि से इनमें परिवर्तन नहीं होता है इन्होंने मूल्यों को सत्यं, शिवं, सुन्दरं नाम से अभिहित किया है। मूल्य व्यक्ति के जीवन को प्रभावित करने वाले वे कारक हैं जो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र, प्रत्येक क्रिया–कलाप अथवा व्यवहार को अपनी अभिव्यक्ति के द्वारा अत्यधिक प्रभावित करते हैं। इनके अभाव में मानव जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती। अतः सभी प्रकार के मूल्य जीवन मूल्य हैं। डॉ0 जगदीश गुप्त की धारणा– ''बिना मानवीय सम्वेदनाओं के केन्द्र में रखे मूल्य की कल्पना नहीं की जा सकती।''[4]

समकालीन कहानीकारों की कहानियाँ उनकी वैविध्य मुखी प्रतिभा एवं प्रखर सृजनशीलता के कारण जीवन के विभिन्न स्तरो में सक्रिय हैं। इस सक्रियता से उनके अनुभव क्षेत्र की विविधता एवं व्यापकता का बोध होता है। सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक तथा नैतिक मूल्यों की पुरातनता एवं विघटन उपरान्त की नवीनता से उत्पन्न स्थितियों का मानव जीवन पर पड़ने वाले प्रभाव का यथार्थ रूप इन्होंने अपनी कहानियों में सम्प्रेषित किया है। निरन्तर सक्रिय आन्दोलनों ने इन्हें परिवर्तित विचारधारा का अनुशीलन करवाया जिससे इनकी कहानियाँ पूर्ववर्ती कहानीकारों की कहानियों से पृथक विचार धारा की सृष्टि करती है। इन काहानीकारों के चारो तरफ के अनाचार, दुराचार, भ्रष्टाचार, कुंठा एवं निराशा के प्रति पलायनवादी प्रवृत्ति को न अपनाते हुए इन्हे तथा इनसे उत्पन्त स्थितियों को यथार्थ अभिव्यक्ति दी है।

साहित्य में मूल्य ओर मानदण्ड युगीन आवश्यकताओं के अनुरूप बदलते और निर्मित होते है। ''साहित्यकार जिस सृष्टि में निवास करता है, वह भावनात्मक सृष्टि समय के बदलते सन्दर्भों के साथ ही परवर्तित होती रहती है। प्रत्येक युग अपने साथ नये मूल्य लेकर आता है तब पुराने मूल्य इतिहास की धरोहर बन जाते है।''[5] मनोरंजन और उपदेश को केन्द्र में रखकर तो कहानियाँ आदिकाल से ही लिखी जा रही हैं। समय और परिस्थितियों के साथ इनमें उबाल आता चला गया। भारतेन्दु युग में मानवतावादी मूल्यों का प्रश्रय मिला तथा द्विवेदी युग में नैतिक मूल्य अधिक पुष्ट हुए इनमें परम्परागत नैतिकता और आध्यात्मिक जीवन से सम्बन्धित मूल्य दिखायी देते है।

प्रेमचन्द युग से मूल्यों के स्वरूप में परिवर्तन होने लगा मूल्याहीनता तो प्रेमचन्द की अन्तिम कहानियों में ही परिलक्षित होने लगी थी। देश में चारों तरफ गरीबी–भुखमरी, दुःख, निराशा संघर्ष व्याप्त था। प्रेमचन्ददोत्तर युग में आर्थिक एवं राजनैतिक मूल्यों की नींव हिलने लगी। मूल्यों के विघटन से उत्पन्न जीमंदारी, शोषण, सामंती व्यवस्था इस युग के लेखकों को आक्रोषित करने लगी। समकालीन कहानी तक आते–आते इस आक्रोश ने भयंकर रूप धारण कर लिया। इस युग के कुछ लेखक निरेपक्ष मूल्यों के पक्षधर थे इसलिए उनके साहित्य में मूल्य व्यापक मानवीय धरातल पर खड़े थे। कुछ कथाकारों ने गाँधीवादी मूल्य, सत्य, आहिंसा, करूणा को कहानियों में इंगित किया।

स्वतन्त्रता के बाद देश में तीव्र गति से परिवर्तन आरम्भ हुआ। इस परिवर्तन ने वैयक्तिक तथा समूहगत स्तर पर आर्थिक एवं रानैतिक मूल्यों को सर्वाधिक प्रभावित किया। अतः जीवन के सभी क्षेत्र अर्थनीति और राजनीति से प्रभावित होने लगे। मनुष्य के लिए यही श्रेय और यही प्रये हो गये। अर्थ की चक्की और

राजनीति की उथल–पुथल में मनुष्य का अस्तित्व नगण्य हो गया। ''यह मूल्यों के मंथन का युग है। पाप–पुण्य, नैतिक–अनैतिक, सही गलत की बनी बनायी धारणाओं के आगे प्रश्न चिह्न ही नहीं लगे बल्कि उन्हें ध्वस्त कर नये मूल्यों को स्थान दिया जा रहा है।''[6] एक और छल–प्रपंच से परिपूर्ण राजनीति मनुष्य को निराशा के गहन अन्धकार में धकेल रही है तो दूसरी ओर आर्थिक असंतुलन उनके भीतर हीन भावना को बढ़ा रहा है।

यथार्थ अभिव्यक्ति के कारण समकालीन कहानी को आलोचकों की आलोचनाओं को शिकार भी होना पड़ा। उनके अनुसार समकालीन कहानियों में निराशा, कुंठा, असफलता को अधिक विस्तार दिया गया है साथ ही उज्ज्वल पक्ष को नकारते हुए तमस पर दृष्टि डाली है। इसका मूल कारण स्वतन्त्रता के बाद की बदली हुयी परिस्थितियाँ हैं। कथाकार ने जैसा पाया वैसा सृजन किया। अगर भयावह यथार्थ है तो सजग शिल्प से उद्‌भूत यथार्थ भी है। लेखक का दायित्व है कि इस व्यवस्थित जन–जीवन, पूँजीवादी व्यवस्था की स्वतन्त्रता, मानसिक सन्तुलन तथा नये मूल्यों के प्रति जागरूकता का प्रयत्न करें। जिससे हम न तो स्वार्थ का शिकार हो, न ही आत्मरति का। समकालीन कहानी में सभी परिस्थितियाँ चरितार्थ हैं।

आर्थिक एवं राजनैतिक मूल्यों की व्यवस्था समकालीन कहानी के केन्द्र में है। कहीं पर आर्थिक अभाववश लोग अपनी प्यारी जमीन से टूटकर पराये शहर से जुड़ रहे है तो कहीं शहरी जीवन की गंदी नालियों में पड़े लोग अपने पेट के लिए जान देने पर तुले हैं। कहीं पर राजनीति ने अपनी क्रूरताओं से पीड़ित वर्ग को और भी पीड़ित बना दिया है तो कहीं जमींदारो द्वारा निम्न वर्ग के तन–मन–धन का शोषण हो रहा है। आजादी के बाद ऐसी तमाम बिद्रूपताओं तथा असामाजिक तत्वों का जन्म हुआ जिससे चारों ओर पीड़ा व्याप्त हुई। कहीं पर यह पीड़ा भारत–पाक विभाजन के कारण जन्मी है, कहीं अकाल के कारण, कहीं युद्ध से जन्मी है कहीं राजनैतिक दोगलेपन से, कहीं अफसरशाही से, कहीं पूँजीवादी व्यवस्था से कही महामारी, जिन्दगी की यांत्रिकता, अकेलेपन और संत्रास से।

आजादी से पूर्व देश अर्थ की दृष्टि से अत्यन्त विपन्न था इसलिए आजाद होते ही सामाजिक सांस्कृतिक मूल्यों के स्थान पर आर्थिक मूल्य को महत्व दिया जाने लगा। इस तरह की अर्थ चेतना जब तक समाज के लिए हितकारी रही तब तक तो आर्थिक मूल्यों को निर्वाह किया गया लेकिन जब वह चेतना स्वार्थ परता की हदे लांघने लगी तो आर्थिक मूल्यों में विघटन की स्थिति उत्पन्न हो गई। समकालीन कहानी अर्थतन्त्र की भयावह स्थितियों, अभावों का यथार्थ चित्र खींचती है। ''एक ओर समाज में गरीबी, पूँजीवाद, वर्गवाद, शिक्षित बेराजगारी अर्थ लोलुपता, अर्थ भोग की प्रवृत्ति है तो दूसरी ओर मार्क्सवाद, गाँधीवादी दर्शन। आम आदमी की भावनाएँ, इच्छाएँ इस अर्थाभाव से टकराकर चकनाचूर हो गई। धन की लिप्सा ने सारे आदर्शों, सिद्धान्तों को निगल लिया और जीवन पूरी तरह अर्थ केन्द्रित हो गया।''[7]

अर्थ समाज में व्यक्ति की पद प्रतिष्ठा का द्योतक है। अर्थ ही वह शक्ति है जो सामाजिक जीवन का नियंत्रित एवं परिचालित कर रही है। आज समाज में व्याप्त असमानता एवं अव्यवस्था का मूल कारण आर्थिक विषमता है। इस आर्थिक विषमता ने समाज को शोषक और शोषित दो वर्गों में विभक्त कर दिया साथ ही आर्थिक विषमता ने अवसरवाद को जन्म दिया जिससे समाज का एक छोटा हिस्सा सामाजिक सुख सुविधाओं का हकदार बन बैठा तथा दूसरो बड़ा हिस्सा साधनहीन होने के कारण जीवन में अभावों से जूझने लगा। आर्थिक स्तर की प्रतिस्पर्द्धा में व्यक्ति भागा जा रहा है तथा आर्थिकता की जटिल परिस्थितियों के जाल में उसकी नैतिकता, ईमानदारी, आचरण एवं कर्त्तव्यनिष्ठा उलझ कर रह गयी है। ''आदर्श का अर्थ बदल गया सेवा, त्याग शब्द भी खोखके हो गए। गबन, डाका और कत्ल जैसे शबद अब हमें चौकाते नहीं हैं। अनशन, सत्यग्रह हड़ताले अछूत शब्द बन गए है सर्वोदय, पदयात्रा और भूदान पाखण्ड के पर्याय हो गए है।''[8]

स्वतन्त्रता पश्चात् जमींदारी प्रथा के उन्मूलन तथा विभिन्न ग्रामीण योजनाओं के माध्यम से थोड़ा प्रभाव अवश्य पड़ा लेकिन भूमि के एक बड़े भाग पर जमींदारों का आधिपत्य होने से समाज में जमीनदारी प्रथा अभी भी कायम है। आजादी से पूर्व यह शोषक वर्ग जमींदार महाजन साहूकार आदि के रूप में था और आजादी के बाद जन सेवकों, ठेकेदारों व नौकरशाहों के रूप में सक्रिय हैं। आर्थिक मूल्यों के विघटन में शिक्षिक बेराजगारी की महत्त्वूपर्ण भूमिका हैं वर्तमान भारत के सामने सबसे विकराल और विस्फोटक समस्या शिक्षित बेरोजगारी है। निरन्तर बढ़ती इसकी भयावह स्थिति ने जीवन संघर्ष को और भी कड़ा बना दिया। इन शिक्षित बेरोजगारों में कमी तो होती नहीं लेकिन हर वर्ष एक नयी जमाल आकर खड़ी हो जाती है। शिक्षा के व्यवसायीकरण ने इसे और भी अधिक बढ़ावा दिया जिससे काम का अभाव होने लगा और समाज में एक अनार सौ बीमार वाली स्थिति दृष्टिगोचर होने लगी।

राजनैतिक उतार–चढ़ाव समकालीन कहानी में गहन रूप में समाविष्ट हुए हैं। नेताओं के स्वार्थ केन्द्रित होने से चरित्र भ्रष्ट हो गये जिससे उनका शोषक रूप उभर कर सामने आया। प्रशासन में भ्रष्टाचार इस कदर बढ़ गया है कि देश की अर्थ व्यवस्था ही खंडित हो गयी। राजनीति में चोर दरवाजा खुलने से एकता का सूत्र टूट गया। दोस्ती की जगह दुश्मनी, बलिदान की जगह कत्ल, एकता की जगह अनेकता और परोपकार की जगह शोषण पल्लवित होने लगा। आदर्शवादी नेता कुर्सी की चाहत में स्वाथी बन बैठे तथा जनता को किये गये वायदे भूलकर उसका शोषण करने लगे। प्रशासन अपने स्वार्थ की दलगत राजनीति के दाव पेचों में इतना निम्न है कि उसे देश या जन समुदाय की कोई चिन्ता नहीं। भारत के लोकतन्त्रात्मक राज्य में राजनीतिक हर घर में जा घुसी है। पुराने मूल्यों के टूटने और नये बनने के बीच असंतुलन विकृतियाँ, विरोधाभाष उत्पन्न हुआ जिसने राजनीति को ही नहीं पूरे समाज को विघटित कर दिया। ज्यों–ज्यों मूल्यों में विघटन तीव्र गति से हआ त्यों–त्यों परम्परागत जीवन मूल्य भ्रष्ट व्यवसीा के कारण असंतुलित व अव्यवस्थिति होने लगे।

भारत पाक विभाजन के बाद हुए साम्प्रदायिक दंगों ने स्नेह तथा सौहार्द के मूल्यों को जलाकर राख कर दिया। चारो तरफ त्रासदी और आतंक की चीख पुकार सुनायी देने लगी। ऊपर से देश को दो–दो विश्वयुद्धों से गुजरना पड़ा इन विश्वयुद्धों से देश उभरा भी नहीं था कि आपालकाल की धोषणा ने रही सही कसर को भी पूरी कर दिया। व्यक्ति के मानस पटल पर इन त्रास्दियों के जो चित्र बने समय की गर्द भी उन्हें धूमिल नहीं कर पायी। राजनीति गुण्डे, डाकू चारों की आश्रय स्थली बन गयी तथा एक के बाद एक राजनैतिक दल सत्ता में आरूढ़ होन लगे। राजनीति में आना एक फैशन हो गया साथ ही वंश परम्परा को भी प्रोत्साहन मिलने लगा। भ्रष्ट व्यक्तियों के राजनीति में घुसने से राजनीति भ्रष्टाचार का दल–दल बन गयी और प्रतिदिन आतंकवाद, चोरी, लूट, हत्या जैसी दुर्दान्त घटनाएँ सुनायी देने लगीं।

गत्यात्मकता अनिवार्य हैं इससे परिवर्तन को प्रोत्साहन मिलता है यदि विघटन न हो तो समाज को नयी दिशा मिलना सम्भव न होगा। विघटन समाज को नयी दिशाएँ देता है। ''आधुनिक युग में ज्ञान–विज्ञान के परिणामस्वरूप आयी औद्योगिक, मशीनीकरण आर्थिक क्रान्ति विघटन का ही परिणाम हैं विघटन संकट नहीं है क्योंकि विघटन गतिशीलता का परिणाम होता है और आगे बढ़ने के लिए गतिशीलता आवश्यक है।''[8] मनुष्य की बुद्धि का विकास और जीवन के प्रति उसका नवीन दृष्टिकोण परिवर्तन को जन्म

देता है। परिवर्तन से मूल्य टूटते है विकसित होते हैं। कई बार विघटन हित में होता है कई बार अहित में। राजनैतिक मूल्यों में विघटन के परिणामस्वरूप जो नयी दिशाएँ उभरी वो कहीं से भी हितकर प्रतीत नहीं होती।

स्वतन्त्रता के बाद मनुष्य अपने परिवेश के प्रति ज्यादा सजग, सचेतन वे विद्रोही बना। वह पुरानी मान्यताओं एवं सिद्धान्तों का मुखापेक्षी बन कर न रह सकात जो समाज उस पर जबरदस्ती थोप रहा था। परिस्थितियों में परिवर्तनशीलता के साथ–साथ जीवन में क्षिप्रता तो आई ही, साथ ही मूल्यहीनता का स्वर भी उभरा, अतः जीवन मूल्यों की असार्थकता से मनुष्य ने पारम्परिक मान्यताओं की उपेक्षा कर अपनी इच्छाओं के अनुरूप नये मूल्यों को स्थापित किया है जिसकी परिणति व्यक्ति और सामजिक मान्यताओं के द्वन्द्व के रूप में हुई है।

स्मकालीन कहानी एक जन चेतना है, जो सबको मूल्यान्वेषी बनती है, इन कहानियों में परम्परा का नहीं परम्परावाद का विरोध हैं मूलतः इनका स्वर व्यवस्था विरोधी है। व्यवस्था के प्रति तीव्र आक्रोश ही इन कहानियों की प्रासंगिकता एवं उपादेयता का प्रमुख लक्षण है। इन कहानियों में विघटित और तनाव भरे सम्बन्धों का एक छोर आधुनिक व्यक्ति की अस्तित्व चेतना से जुड़ा हुआ है और दूसार आर्थिक चेतना से। मूल्य विघटन के उपरानत सम्बंधों में आये तनावं विघटन और जटिलता को समकालीन कहानी अभिव्यक्त करती हैं इनमें से बात की तनिक भी परवाह नहीं की गयी है कि इनमें वर्णित तथ्य कितने अश्लील एवं रोंगटे खड़े करने वाले है। सूर्यबाला जी ने लिखा है – ''कहीं किसी भी क्षेत्र में हमारा जीवन स्थिर सुनिश्चित और सुरक्षित नहीं है शिक्षा धर्म नैतिकता, राजनीति हर क्षेत्र में हम चौराहे पर खड़े हैं और किसी भी रास्ते के प्रति जरा भी आश्वस्त नहीं है। जीवन दृष्टियों का यह द्वन्द्व ही क्या हम अपने बच्चों को नहीं दे रहे। मानसिकता एक विचित्र संक्रमण के दौर से गुजर रही है जिससे हर तरफ सवालों के जंगल और तर्कों के उलझाव है नेतिकता कितनी खोखली, आदर्श कितने पाखण्ड और जीवन मूल्य कितने सारहीन।''[9]

समकालीन कहानी की प्रमुख विशेषता यथार्थ के अभ्यन्तरीकरण की है। इनमें यथार्थ के प्रति मात्र प्रतिक्रिया ही नहीं हुई है बल्कि यथार्थ को भीतरी दुनिया में रूपान्तरित कर सृजन किया गया हैं समकालीन साहित्य के बीच सभी मानवतावादी परम्पराओं में मिलते हैं कहानीकार मूल्यों विकल्पों और विचारधाराओं के इस धक्कम–धक्के में या तो सर्व निषेध का रूख अपनाता है या फिर किसी एक विकल्प को चुनकर उसके मान मूल्यों को रूपायित करता है यही कारण है कि समकालीन काहानी में मूल्यों विकल्पों की अनिश्चितता, अतृप्ता का स्वर बहुत प्रबल है। इन कहानियों में परिवर्तित और 'शाश्वत' मूल्यों के बीच द्वन्द्व स्पष्ट दिखाई देता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. ईश्वर चन्द्र शर्मा पश्चिमी आचार विज्ञान का आलोचनात्मक अध्ययन पृ0 18
2. डा0 देवराज संस्कृति का दार्शनिक विवेचन प्रथम संस्करण पृ0 61
3. डा0 जोसफ ए0लाइगनपि सोशल फिलासफीज इन कर्नाय्लवट, पृ0 270
4. डा0 जगदीश गुप्त, लहर सितम्बर 60 पृ0 36
5. डा0 मोहिनी शर्मा, हिन्दी उपन्यास और जीवन मूल्य, पृ0 2
6. प्रो0 राम बिहारी सिंह तोमर भारतीय सामाजिक संस्थाऐ पृ0 336
7. बीसवी शताब्दी की हिन्दी कहानियॉ, महेश दर्पण, पृ0 92–93
8. धर्मवीर भारती, मानव मूल्य और साहित्य पृ0 123
9. सूर्यबाला, धर्मयुग 16 से 22 मार्च 1980 पृ0 36